शिक्षक की स्वायत्तता का सवाल

❑ रोहित धनकर

आधुनिक भारतीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर का शिक्षक हमेशा ही कुछ बेचारा-सा रहा है। अन्य राज्य-कर्मचारियों की तुलना में उसका वेतन और हैसियत सदा ही निचले दर्जे की रही है। समाज में उसकी जो भी हैसियत रही है वह अतीत की किन्हीं धारणाओं पर आधारित लगती है। गुरू और गोविन्द की तुलना वाले दोहे और गुरू को ब्रह्मा, विष्णु आदि कहने वाले श्लोकों की सच्चाई स्त्री को देवी कहने वाली सच्चाई से अधिक कुछ रही नहीं लगती है। जो भ्रम देहाती इलाकों में शिक्षक की बेहतर हैसियत को लेकर अभी कुछ समय पहले तक था वह उस वक्त के शिक्षकों की जाति और गांव में आर्थिक स्थिति का परिणाम था। अधिकतर शिक्षक ऊंची कही जाने वाली जातियों के थे। गांव में थोड़ी बेहतर आर्थिक स्थिति वाले लोग ही पढ़े लिखे होते थे। रोजगार के साधन कम थे, इसलिए ग्रामीण शिक्षितों की पहली पीढ़ी का सपना शिक्षक तक ही जाता था। अतः यह हैसियत शिक्षक के नाते कम और अन्य कारणों से अधिक थी।

कक्षा में पढ़ाने की विषय-वस्तु और तरीकों में शिक्षक को बहुत स्वायत्तता रही हो ऐसा लगता नहीं है। उसे पाठ्यपुस्तक से बंधकर ही काम कराना होता था। परीक्षा और मुआयना का डर उस पर रहता ही था। गिजुभाई के दिवास्वप्न के काल्पनिक शिक्षक बड़े साहब से अनुमति लेकर ही अपनी कक्षा में कुछ अलग कर पाये, वह भी लगातार हैडमास्टर के तानों, उलाहनों के बीच। 'संयुक्त प्रांत में आरंभिक शिक्षा' में प्रेमचन्द (शिक्षा विमर्श, जून 1998 के अंक में प्रकाशित लेख) ने कहा है कि 'दुर्भाग्य से सरकार का ख्याल है कि मुआइना ज्यादा होना चाहिए चाहे तालीम हो या न हो। मुआइने पर रुपया खर्च किया जाता है मगर तालीम की खबर नहीं ली जाती।' अर्थात् जितना मुआयना किया जाता है उतना पढ़ाया जाता तो शिक्षा की स्थिति कहीं बेहतर होती। शिक्षक को जो भी स्वायत्तता कक्षा में मिलती रही है वह तंत्र के ठीक से न चलने के कारण ही रही है। मुआयना करने वाले, उस पर रोब गांठने वाले, जब काम चोरी के कारण या अन्य कामों में व्यस्तता के कारण सालों तक विद्यालयों में जा ही न सकें तो एक तरह की 'स्वायत्तता' मिल ही जाती है। पर यह स्वायत्तता न तो वैधानिक होती है न ही प्रभावी। एक डरी-सी, चोरी की स्वायत्तता होती है, जो आदमी को हिम्मत देने की बजाय उसको कामजोर करती है कि कहीं चोरी पकड़ी न जाये। साथ ही शिक्षक के लिए उसकी काबिलियत को बढ़ाने वाली सहयोगी व्यवस्था भी कोई नहीं रही है। उसने प्रशिक्षण में जो आधा-अधूरा सीखा उसी को अपने तरीके से ढाल कर काम चलाते रहने की अपेक्षा उससे की जाती रही है।

पिछले लगभग 15 सालों में इस स्थिति के कुछ पहलू बदले हैं। जैसे अब शिक्षक - सरकारी नियमित शिक्षक - का वेतन अन्य सरकारी कर्मचारियों के लगभग बराबर आ गया है। यह अलग बात है कि जैसे ही यह वेतन बराबर आया विद्यालयों में शिक्षक की जगह शिक्षा-कर्मी और शिक्षा-मित्रों आदि की नियुक्ति होने लगी, शिक्षकों की नहीं। पर औपचारिक शाला में शिक्षक का वेतन तो बढ़ा ही है। दूसरी बात यह कि शिक्षक का अकेलापन

कम हुआ है। अब उसे शैक्षणिक समर्थन देने के लिए प्रशिक्षणों की एक के बाद एक कड़ियां आती ही जाती हैं। यहां तक कि ये कड़ियां अधिकतर शिक्षकों की नजर में अब एक जंजीर बन गई है। ये प्रशिक्षण उसकी मदद करने के बजाय उसे और ज्यादा बांधने का ही काम अधिक करते हैं।

इस पृष्ठभूमि में कुछ दिन पहले बंगलौर में एक सेमीनार हुई, जिसमें 'शिक्षक की स्वायत्तता और जवाबदेही' पर संवाद हुआ। सेमीनार तो अपनी जगह अच्छी ही थी। पर मुझे लगता है कि उसके संवादों में बार-बार और बहुत जोर देकर कही जाने वाली दो बातों पर बहुत गहन विचार-विमर्श की जरूरत है। एक, बहुत से वक्ताओं द्वारा स्वायत्तता का अर्थ लगभग जिम्मेदारी विहीन 'स्वतंत्रता' मनाना; और दो, जवाबदेही और स्वायत्तता में विरोध देखना। ऐसा नहीं है कि ये दो मान्यताऐं पहली बार उस सेमीनार में ही उभरकर आईं। यह आम धारणा है, जो सेमीनार में रेखांकित भर हुई। और यह धारणा आम है इसीलिए इस पर यहां विचार करने की जरूरत महसूस होती है।

पर उससे भी पहले एक और बात। शिक्षक कि स्वायत्तता और अच्छी शिक्षा में एक अनिवार्यता का संबंध है, जिसे रेखांकित करने की जरूरत है। हमारे सभी शिक्षा नीति संबंधी दस्तावेज यह मान कर चलते हैं कि शिक्षित व्यक्ति स्वतंत्रचेता, सक्षम और जिम्मेदार होना चाहिए। वह व्यक्तिगत और सामाजिक-राजनैतिक चिन्तन में दूसरों का मुंह देखने वाला न हो बल्कि स्वयं सोचकर किसी नतीजे पर पहुंचने की काबिलियत वाला हो। यदि उसे दूसरों के विचार लेने (जानने भी) हों तो भी यह निर्णय लेने की काबिलियत तो उसमें हो ही कि किसकी बात को चुने। यह बात शिक्षा के उद्देश्यों में बार-बार ध्वनित होती है, राधाकृष्णन आयोग से लेकर अभी-अभी के संशोधित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 तक में।

शिक्षा पर चिन्तन करने वाले भारतीय विचारक तो और भी अधिक बलपूर्वक व्यक्ति के स्वतंत्रचेता होने की बात करते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं कि आदमी यदि अपनी एक साफ आत्म-छवि नहीं बनाता है, वह क्या होना चाहता है और क्या बनना चाहता है, इसकी कोई तस्वीर उसके पास नहीं है और उस तस्वीर को साकार करने का प्रयत्न नहीं करता है तो यह उसकी इंसानियत का अपमान है। अर्थात् स्वतन्त्रचेता होना और अपने सपनों को साकार करने की कोशिश टैगोर के लिए इंसान होने की निशानी है। यह स्वतंत्रचेता होने से आगे बढ़ कर एक हद तक 'स्वयं भू' होने की ललक की अभिव्यक्ति है। यह ठीक है कि अपनी वांछनीय तस्वीर बनाना और उसे साकार करने का प्रयत्न दूसरों के बीच, उनके सहयोग-समर्थन-विरोध के साथ ही होता है। बल्कि कह सकते हैं कि आत्म-छवि का महत्त्वपूर्ण और एक बड़ा हिस्सा शायद उन दूसरों की आंखों के माध्यम से बनता हो जो व्यक्ति की परवाह करते हैं। तो भी यह इंसान का अपने होने की वास्तविकता को दिशा देने का प्रयत्न तो है ही।

अब सवाल यह उठता है कि किस तरह की शिक्षा इस तरह के स्वतंत्रचेता व्यक्ति के विकास में मदद कर सकती है ? क्या एक ऐसा शिक्षक जो स्वयं अपने काम के बारे में सोच समझ कर जिम्मेदारीपूर्वक निर्णय नहीं ले सकता विद्यार्थियों की स्व-चेतना के विकास में सहायक हो सकता है ? शिक्षण-शास्त्र की दृष्टि से यह संभव नहीं लगता। अर्थात् यदि हम हमारी शिक्षा नीति एवं भारतीय विचारकों के मन की शिक्षा चाहते हैं तो वह एक विद्यालय में बहुत हद तक स्वायत्त शिक्षकों के माध्यम से ही संभव है।

पर क्या स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करने की आजादी है ? जिस सेमीनार का जिक्र मैंने किया है उसमें बहुत से वक्ता बार-बार दोहरा रहे थे कि शिक्षक स्वायत्त हुआ तो वह विद्यालय में क्या पढ़ायेगा, कैसे पढ़ायेगा आदि पर कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। वह अपना काम ठीक से नहीं करेगा आदि-आदि।

यहां आकर लगता है कि शिक्षक की स्वायत्तता पर आगे तभी बढ़ा जा सकता है जब पहले हम यह साफ कह दें कि स्वायत्तता से हमारा आशय क्या है। यह समझने के लिए पहले सैद्धांतिक तौर पर स्वायत्तता की आवश्यक शर्तों पर कुछ विचार करना होगा, तभी आगे उसके आधार पर विद्यालय में स्वायत्त शिक्षकों की कल्पना की जा सकेगी। स्वायत्तता को निर्बाध, मनमाने व्यवहार से अलग करने के लिए हमें उसके विवेक के दायरे में होने की शर्त लगानी होगी। अर्थात् हम विवेकशील स्वायत्तता की बात करेंगे। स्वायत्तता या तो विचार की हो सकती है या काम करने की। विचार की स्वायत्तता से आशय है हम क्या सोचें, किन आदर्शों पर चलें, किन बातों को सत्य मानें और किन को गलत मानें; इस पर स्वयं निर्णय करना, स्वयं मत बनाना। काम में स्वायत्तता का आशय है कि हम कौनसे काम करें और उनको कैसे करें यह चुनाव हमारा खुद का हो। इस स्वायत्तता के विवेकशील होने के लिए जरूरी होगा :

1. *कि कोई बाहरी दबाव, बाध्यता, इस बात के लिए न हो कि यह मानो या यह न मानो, यह करो या यह न करो। और यदि ऐसे बाहरी निर्देश हों तो उनके लिए उपयुक्त कारण भी बताये जाएं, समझाए जाएं, उन पर सहमति ली जाए। कोई भी ऐसे निर्देश, आज्ञा या दबाव न हों, जिनके कारण या आधार न बताए जाते हों।*

2. *हम जो मानते और करते हैं उसकी सचाई की उपयुक्तता की जांच स्वयं करें, ऐसे मानदंडों के आधार पर जिनको हम ठीक समझते हैं, जिन पर हम विश्वास करते हैं।*

इन दो शर्तों के तहत किए गए काम को, लिए गए निर्णयों को हम स्वायत्त काम या स्वायत्त निर्णय कह सकते हैं। स्वायत्तता की यह धारणा मांग करती है कि :

1. *हम अपने चुनाव खुद करें, ऐसे आधारों पर जिनको हम समझते हैं और स्वीकार करते हैं। और दूसरों को समझा सकें, उन पर संवाद कर सकें, उनकी विवेचना कर सकें।*

2. *हम जो भी चुनाव करते हैं वह आलोचना के लिए सदा खुला रहना चाहिए।*

3. *हमारे चुनाव तब तक ठीक हैं जब तक हम उनकी आलोचना के मान्य जवाब दे सकते हैं।*

अर्थात् स्वायत्तता में मर्जी से कुछ भी करने या न करने का मामला नहीं है बल्कि विवेक सम्मत आधारों पर चुनाव की स्वतंत्रता का नाम है। इसमें डर और दबाव में लिए गए निर्णयों के लिए कोई जगह नहीं है, स्वायत्तता में बाहरी दबावों का उतना ही विरोध है जितना दुराग्रहों और आत्म-केन्द्रित इच्छाओं के आन्तरिक दबाव का।

इस तरह की स्वायत्तता यदि हम शिक्षकों को देना चाहते हैं तो उनको अपने काम में माहिर बनाना होगा। उनको शिक्षा के सभी पहलुओं की समझ होना जरूरी होगा। यह उनकी व्यावसायिक (प्रोफेशनल) काबिलियत पर निर्भर करेगी। विद्यालयों को बेहतर चलाने का केवल यही एक रास्ता है : उनमें काबिल शिक्षकों को पढ़ाने भेजा जाये और उनको पूरी व्यावसायिक स्वायत्तता दी जाए। इसका उल्टा : बिना काबिलियत वाले नियमों की जंजीरों में बंधे शिक्षक, कभी अच्छी शिक्षा का काम नहीं कर पायेंगे।

जवाबदेही भी स्वायत्तता से अवधारणात्मक स्तर पर जुड़ी हुई है। किसी को उसी काम के लिए जिम्मेदार, जवाबदेह ठहराया जा सकता है जो उसने करना स्वीकार किया हो और खुद के तरीके से किया हो। यदि विद्यालय के सारे तौर-तरीके कोई और तय करेगा- कितने दिन चले, कितने समय चले, कौनसी चीज कितने समय में किस तरीके से पढ़ाई जाए, क्या पहले पढ़ाया जाए और क्या बाद में, आदि आदि। तो शिक्षक को

किस चीज के लिए जबावदेह ठहराया जा सकता है ? केवल इसके लिए कि उसने आपके आदेशों का पालन किया या नहीं, न कि इस बात के लिए कि बच्चों ने सीखा क्यों नहीं। वह कह सकता है, और कहता भी है, कि जैसा आपने करने को कहा मैंने कर दिया, बच्चे सीखे नहीं इसके मायने हैं आपकी बताई चीजें, आपकी बताई विधि से सीख ही नहीं सकते। तो जिम्मेदार आपकी विधि हुई और जवाब आपको देना चाहिए।

अब सवाल यह उठता है कि यदि शिक्षक अपने स्तर पर विद्यालय संबंधी निर्णय लेने की व्यावसायिक काबिलियत रखता है, सुविचारित विवेक सम्मत निर्णय लेने की काबिलियत रखता है, अपने साथियों और शिक्षा से जुड़े अन्य लोगों से अपने निर्णयों पर संवाद कर सकता है तो क्या उसे विद्यालय पूरी तरह से अपनी इच्छानुसार चलाने की छूट मिल जानी चाहिए ? मुझे लगता है इसमें दो शर्तें और जोड़नी पड़ेंगी। पहली तो यह कि शिक्षा का काम किसी शिक्षाक्रम के ढांचे में ही होता है। जो स्वयं राष्ट्रीय शिक्षा-नीति एवं संविधान के दायरे में बनाया जाता है। साथ ही किसी भी राज्य के या संगठन के अपने सेवा नियम होते हैं जो कर्मचारी के काम का दायरा और उसकी जिम्मेदारियां आदि तय करते हैं। जब कोई शिक्षक विद्यालय में पढ़ाता है तो उसे भी शिक्षाक्रम द्वारा तयशुदा दिशा एवं दायरे में ही काम करना होगा और राज्य में सेवा नियमों के तहत ही काम करना होगा। तो स्वायत्तता का आशय होगा ऐसा शिक्षाक्रम बनाना जो व्यापक दिशा निर्देश दे पर शिक्षक के लिए काम करने के निर्णय लेने के लिए खूब स्थान दे। ऐसे शिक्षाक्रम की कल्पना की जा सकती है जो प्राथमिक स्तर के लिए शिक्षा के लक्ष्य तय करे एवं शिक्षण विधि के लिए सामान्य दिशा निर्देश दे। पर विशिष्ट विषयवस्तु, पाठ्यपुस्तक, पाठ्यविधि आदि का निर्णय शिक्षक पर छोड़ दे। इसी तरह सेवा नियम भी, वर्ष के कितने दिन काम करना है तथा रोज कितने समय काम करना है विद्यालय में यह तो तय कर दें पर स्थानीय परिस्थितयों के आधार पर समय सारणी एवं छुट्टियों का ब्यौरा शिक्षक पर छोड़ दें। तो जिन दो शर्तों की बात हम कर रहे थे उनमें पहली होगी : शिक्षाक्रम एवं सेवा नियमों के ढ़ांचे में काम करने की स्वतंत्रता।

दूसरी बात यह है कि स्वायत्तता तभी काम करती है जब उसका उपयोग किसी व्यावसायिक समूह में किया जाए। इसके निहितार्थ ये बनते हैं कि स्वायत्तता की इकाई के रूप में हम एक विद्यालय या कहें 10 शिक्षकों के समूहों को देखें। कल्पना करें कि विद्यालयों को ऐसे समूहों में बांट दिया गया है जिनमें प्रत्येक में 10-15 शिक्षक हैं। ये सारे शिक्षक अपने विद्यालयों की शिक्षा योजना एवं संचालन योजना साथ मिलकर, विचार विमर्श के बाद बनाते हैं। समय-समय पर समीक्षा करते हैं कि बनाई गई योजना की क्रियान्विति किस तरह से और कितनी हुई। शिक्षकों के इस तरह के स्वायत्त समूह बनाए जा सकते हैं। और विद्यालयों के चलने एवं बच्चों के सीखने के लिए उन्हें जवाबदेह माना जा सकता है।

निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि विवेक सम्मत स्वायत्तता शिक्षाक्रम के ढांचे में और सक्षम शिक्षकों के समूहों में बहुत कारगर हो सकती है। यह न तो जिम्मेदारी विहीन मनमाने व्यवहार को बढ़ावा देगी, न जवाबदेही को कम करेगी। साथ ही शिक्षक के काम की स्वतंत्रता को भी बरकरार रखेगी। पर यह सब बेहतर शिक्षक प्रशिक्षण एवं ढांचागत सुधार के साथ ही क्रियान्वयन में लाया जा सकता है। ◆